अनुयोग और उनके विभाग

□ मुनि श्री किशनलाल

(युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के शिष्य)

भाषा से भावों की अभिव्यक्ति और विचार-विनिमय होता है। जो व्यक्त ध्वनि विचारों और भावों को दूसरों तक पहुँचाने में सहायक होती है, उसे भाषा कहा जाता है। 'भाषा[1] रहस्य' में भाषा की परिभाषा करते हुए लिखा है—'मनुष्य मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं। तात्त्विक दृष्टि[2] से वह ध्वनि जो काय योग से गृहीत वाग्योग से निसृष्ट भाषा वर्गणा सहित होती है, उसे भाषा कहते हैं।

ध्वनि को चिह्न या संकेतों से अंकित कर लिया जाता है जिसे हम लिपि कहते हैं। लिपि और भाषा मानव-समाज की एक विशिष्ट सम्पत्ति है जिससे विचारों का स्थायित्व और विनिमय होता है। स्थायित्व से साहित्य वाङ्मय और विनिमय से समालोचना शास्त्र का आविर्भाव होता है जिससे मानव सम्यक् और असम्यक् का निर्णय कर 'सत्यं शिवं और सुन्दरं' की ओर प्रेरित हो सकता है।

भाषा को रूपक में हम यों समझ सकते हैं। भाषा आत्मा रूपी कूएँ का वह नीर है जो आठ बाल्टियों से निकाला जाता है जिन्हें हम स्थान[3] कहते हैं। नीर वैसा ही निकलेगा जैसा कुएँ में होगा। भाषा की भी यही अवस्था है, जिसकी आत्मा पवित्र होती है। उसकी भाषा भी पवित्र होती है। भगवान् महावीर ने राग-द्वेष के बीजों को दग्ध किया। आत्मा पवित्र बन गई। उसके पश्चात् ही दूसरों को पवित्रता की ओर प्रेरित करने के लिए प्रवचन करना प्रारम्भ किया। वे अर्थ का कथन करते हैं जैसा कि बृहद् वृत्ति में बताया गया है—

अत्थं भासई अरहा, तमेव सुत्तीकरेंति गणधरा।
अत्थं च विणा सुत्तं, अणिस्सियं के रियं होई॥

अरिहन्त केवल अर्थ की भाषा में बोलते हैं। उसको ही गणधर सूत्र रूप में ग्रथित करते हैं। अर्थ के बिना सूत्रों का क्या मूल्य? सूत्र जब ही मूल्यवान् बनते हैं, जब वे अर्हन् अर्थ से संयुक्त होते हैं। सूत्रों की मूल्यवत्ता अर्थ के आधार पर ही तो है। अर्हन् वाणी के अनुकूल होने से ही अनुयोग कहा गया है। अनुयोग का अर्थ है व्याख्या की पद्धति। उसके लिए अनुयोग द्वार एक स्वतन्त्र आगम है।

---

१. द्रष्टव्य—पृ० २८.

२. काययोगगृहीत वाग्योग निसृष्ट भाषा द्रव्यं संहत्ति। —श्री स्थानांगवृत्ति, पृ० १७३

३. कालु कौमुदी, पृ० ७ :
अष्टौ स्थानानि वर्णानां उर कंठः शिरस्तथा।
जिह्वा मूलं च दन्ताश्च नासिकौष्ठं च तालुका॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयोग शब्द की शल्य चिकित्सा करते हुए प्राचीन ग्रन्थों में आया है—"अणु-ओयणमणुयोगो" अनुयोजन को अनुयोग कहा है। अनुयोजन यहाँ जोड़ने से संयुक्त करने के अर्थ में आया है जिससे एक दूसरे को सम्बन्धित किया जा सके। इसी को स्पष्ट करते हुए टीकाकार ने लिखा है—"युज्यते संबध्यते भगवदुक्तार्थेन सहेति योगः" भगवद् कथन से संयोजित करता है अतः उसको अनुयोग कहा गया है। अभिधान राजेन्द्र कोश में ऐसा भी अर्थ मिलता है—"अणु सूत्रं महानर्थस्ततो महतोर्थस्याणुनासूत्रेण योगो अनुयोगः" छोटे सूत्र में महान् अर्थ का योग करने को अनुयोग कहा गया है—अनु-योग। अनु उपसर्ग है। योग भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। जैनसिद्धान्तदीपिका[1] में मन, वचन, काया के व्यापार को योग कहा है। इस प्रकार विभिन्न अर्थों का बोध होता है। यह उचित भी है क्योंकि शब्द में अर्थ प्रकट करने का सामर्थ्य नहीं होता, वह तो केवल प्रतीक मात्र है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से गुजरने से शब्दों के अर्थों में ह्रास और विकास होता है। तब ही आचार्यों ने उचित ही कहा है—शब्द की परिभाषा करते समय हमें वह वहाँ, किस प्रकार और किस स्थिति में प्रयुक्त हुआ है, कौन सी धातु प्रत्यय आदि उसकी निष्पत्ति के निमित्त हैं जानना होगा तब ही हम उसके हार्द को पकड़ सकते हैं। अनुयोग जैन पारिभाषिक शब्द है—सूत्र और अर्थ का उचित सम्बन्ध अनुयोग है या हम यों कह सकते हैं अर्हन् वाणी के अनुकूल जो भी कथन है वह अनुयोग है अतः यथार्थ समस्त वाङ्मय अनुयोग के अन्तर्निहित हो जाता है।

जनागमों में अनुयोग के अनेकों भेद-प्रभेद मिलते हैं। नंदी में अनुयोग के दो विभाग हैं। वहाँ दृष्टिवाद के पाँच विभागों में अनुयोग[2] का उल्लेख है। प्रश्न उपस्थित किया गया है—"कोऽयं मणु योगः" समाधान में वह दो प्रकार का है—

१. मूल प्रथमानुयोग[3]

२. गंडिकानुयोग

मूल प्रथमानुयोग

मूल प्रथमानुयोग क्या है? आचार्य का उत्तर प्राप्त होता है इसमें अर्हन् भगवान् को सम्यक्त्व प्राप्ति के भव से पूर्वभव, देवलोक, गमन, आयुष्य, च्यवन, जन्म, अभिषेक, राज्यश्री, प्रवज्या, तप, भक्त, केवलज्ञानोत्पत्ति, तीर्थप्रर्वतन, संघयन, संस्थान, ऊँचाई, वर्ण, विभाग, शिष्य, गण, गणधर, साधु-साध्वी, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ का परिमाण, केवली, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यग्ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तर विमान में गए हुए, जितने सिद्ध हुए उनका, पादपोपगमन अनशन को प्राप्तकर जो जहाँ जितने भक्तों को छोड़कर अन्तकृत हुए अज्ञान रज से विप्रमुक्त हो जो मुनिवर अनुत्तर सिद्धि मार्ग को प्राप्त हुए हैं उनका वर्णन है। इसके अतिरिक्त इन्हीं प्रकार के अन्यभाव जो अनुयोग में कथित है वह प्रथमानुयोग है अर्थात् सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्ति से तीर्थंकर तक के भवों का जिसमें वर्णन है वह मूल[4] प्रथमानुयोग है।

गंडिकानुयोग

गंडिका का अर्थ है समान वक्तव्यता से अर्थाधिकार का अनुसरण करने वाली वाक्य पद्धति। उसका अनु-

---

१. चतुर्थप्रकाश, सू० २६.

२. श्रीमलयगिरीया नंदीवृत्ति : पृ० २३५, परिकम्मे, सुत्ताइं, पुव्वगए, अणुयोगे चुलिया।

३. श्रीनंदीचूर्णी, पृ० ५८ मूल-पढमाणुयोगे गंडियाणुयोगे।

४. इह मूल भावस्तु तीर्थंकरः तस्स प्रथमं पूर्वभवादि अथवा मूलस्य पढमा भवाणुयोगे एत्थगरस्स अतीत भव परियाय परिसत्तई भाणियव्वा। —श्रीनंदीवृत्तिचूर्णी, पृ० ५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग अर्थात् अर्थ प्रकट करने की विधि। श्री मलयगिरि ने नंदीवृत्ति[1] में गंडिकानुयोग की टीका करते हुए लिखा है इक्षु के मध्य भाग की गंडिका सदृश एकार्थ का अधिकार यानि ग्रन्थ-पद्धति है। उसको गंडिकानुयोग कहा गया है। वह[2] अनेक प्रकार का है।

१. कुलकर गंडिकानुयोग—विमलवाहन आदि कुलकरों की जीवनियाँ

२. तीर्थंकर गंडिकानुयोग—तीर्थंकर प्रभु की जीवनियाँ

३. गणधर गंडिकानुयोग—गणधरों की जीवनियाँ

४. चक्रवर्ती गंडिकानुयोग—भरतादि चक्रवर्ती राजाओं की जीवनियाँ

५. दशार्ह गंडिकानुयोग—समुद्रविजय आदि द्वादशार्हों की जीवनियाँ

६. बलदेव गंडिकानुयोग—राम आदि बलदेवों की जीवनियाँ

७. वासुदेव गंडिकानुयोग—कृष्ण आदि वासुदेवों की जीवनियाँ

८. हरिवंश गंडिकानुयोग—हरिवंश में उत्पन्न महापुरुषों की जीवनियाँ

९. भद्रबाहु गंडिकानुयोग—भद्रबाहु स्वामी की जीवनी

१०. तपकर्म गंडिकानुयोग—तपस्या के विविध रूपों का वर्णन

११. चित्रान्तर गंडिकानुयोग—भगवान् ऋषभ तथा अजित के अन्तर समय में उनके वंश के सिद्ध या सर्वार्थ-सिद्ध में जाते हैं, उनका वर्णन

१२. उत्सर्पिणी गंडिकानुयोग—उत्सर्पिणी का विस्तृत वर्णन

१३. अवसर्पिणी गंडिकानुयोग—अवसर्पिणी का विस्तृत वर्णन

तथा देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नरक गति में गमन करना, विविध प्रकार से पर्यटन करना आदि का अनुयोग इस प्रकार गंडिकानुयोग के विविध रूप में हमें प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार वैदिक परम्परा में पुराण हैं वैसे ही विविध प्रकरणों के ग्रन्थ हैं। इनकी रचनाएँ भिन्न आचार्यों से सम्पन्न हुई हैं। उसका उल्लेख ईसा की सातवीं शताब्दी के आस-पास की रची "पञ्च कल्पचूर्णी" में मिलता है कि कालिकाचार्य ने गंडिकायें रचीं। "सुवर्णभूमि में कालिकाचार्य" पुस्तक में आया है कि उन्होंने गंडिकाऐं रचीं परन्तु संघ ने वे स्वीकार नहीं कीं। कालिकाचार्य ने संघ के सम्मुख पुन निवेदन किया कि मेरी गंडिकाएँ स्वीकृत क्यों नहीं की गईं? उनकी कमियों को सुझाया जाए या स्वीकृत की जाए। तब पुनः संघ ने अन्य बहुश्रुत आचार्यों के पास गंडिकाएँ प्रेषित कीं। उन्होंने उन सबको सम्यग् बताईं तब कहीं वे स्वीकृत तथा मान्य हुईं।

इस घटना से गण्डिकाओं की यथार्थता पर सन्देह का अवकाश नहीं रहता। कालिकाचार्य जैसे समर्थ और प्रभावशाली आचार्य की गण्डिकाएँ भी संघ द्वारा स्वीकृत होने पर ही मान्य हुईं।

दिगम्बर परम्परा में केवल 'पढमाणुयोग' ही मानते हैं। उनकी मान्यता के अनुसार उसमें २४ अधिकार हैं। तीर्थंकर पुराण में सब पुराणों का समावेश हो जाता है।

---

१. श्री नंदीवृत्ति, पृ० २४२.

२. श्रीसमवायांगवृत्ति, पृ० १२०
से किं तं गंडियाणुयोगे? गंडियाणुयोगे अणेग विहे पण्णत्ते·····।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमकाल में अनुयोग के अन्तर्गत समस्त वाङ्मय आ जाता था। पहले जैनागम अनुयोग के रूप में विभक्त नहीं थे। वीर निर्वाण छठी शताब्दी में (५८४ से ५९७) वज्र स्वामी के प्रमुख शिष्य आर्यरक्षित के द्वारा विभक्त हुए। उस घटना को स्पष्ट करने के लिए यह गाथा ही यथेष्ट हैं—

देविंदं वंदिएहि महाणुभावोहि रक्खियज्जेहिं।
जुग मासज्ज विभक्तो, अणुयोगो तो कओ चउहा ॥

(अभिधान राजेन्द्र कोश)

देवेन्द्रों से वंदित महानुभाव आर्यरक्षित ने प्रवचन हित के लिए अनुयोग के चार विभाग किये। जिससे अध्ययनेच्छु आगमार्णव में प्रवेश पा श्रुत की आराधना कर सकें। विभाग करने के पीछे इतिहास भी है।

आचार्य आर्यरक्षित के चार प्रमुख शिष्य थे—

१. दुर्बलिका पुष्यमित्र
२. फल्गुरक्षित
३. विंध्य मुनि
४. गोष्ठामाहिल।

एक दिन विंध्यमुनि ने गुरु से निवेदन किया—"आप मुझे अकेले को ही वाचना देवें।" "यह मेरे लिए सम्भव नहीं, अतः आज से तुम्हें दुर्बलिकापुष्य वाचना देंगे, तुम उनसे पढ़ना।" आचार्य ने उनको शीघ्र अध्ययन सामग्री मिलने के लिए व्यवस्था कर दी। कुछ दिनों तक वे वाचना देते रहे। फिर एक दिन गुरु से निवेदन किया—भन्ते ! वाचना में समय अधिक लगने से मेरे नवें पूर्वज्ञान की विस्मृति सी हो रही है। अगर यही क्रम रहा तो मैं सारा पूर्व भूल जाऊँगा। आर्यरक्षित आचार्य ने विचार किया कि दुर्बलिकापुष्य जैसे मेधावी की यह गति है तब दूसरों की तो क्या दशा होगी। अब प्रज्ञा की हानि हो रही है। प्रत्येक आगम में चारों अनुयोगों को धारण करने की क्षमता रखने वाले अब अधिक नहीं होंगे। चिन्तन पश्चात् आगम साहित्य को चार[1] भागों में विभक्त कर दिया—

चत्तारि अणुयोग चरण धम्म गणियणुयोग य—
दव्वियणुयोगे तहा जहक्कमं महिड्ढिया ॥

(अभिधान राजेन्द्र कोश)

१. चरण करणानुयोग
२. धर्मकथानुयोग
३. गणिताणुयोग
४. द्रव्यानुयोग।

चैतन्य के मूल स्वरूप को प्राप्त करना ही मुक्ति है और यही सभी दर्शनों और धर्मों का चरम लक्ष्य रहा है। जैन दर्शन का साध्य तो मुक्तावस्था है ही। उसकी प्राप्ति के लिए परम प्रभु प्रवचन करते हैं। ज्ञान-विज्ञान की सारी सिद्धियाँ आत्म साक्षात्कार की ओर ले जाने से ही श्रेष्ठ हैं अन्यथा बेकार और दुःखप्रद है। चरणकरणानुयोग में आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया का वर्णन है। उसमें आचारांगादि आचार-ग्रन्थ आते हैं।

"चर्यते एनेन इति चरणं भवोदधेः परं कूलं प्राप्यते" जिसके द्वारा भवसागर का किनारा प्राप्त किया जा सके उसे चरण कहते हैं। जैसे मनुष्य चरणों से मंजिल तय करता है। वैसे ही साधक चरण (चारित्र) के द्वारा अपने चरम

---

१. आवश्यक कथा १७४:

चतुष्वेकैक सूत्रार्था—ख्याते स्यात् कोऽपि न क्षमः।
ततोऽनुयोगां चतुरः पार्थक्येन व्यधात् प्रभु : ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप को प्राप्त करता है। चलने में चरणों का प्रमुख स्थान है। ठीक वैसे ही आत्म-स्वरूप को प्राप्त करने में चरण-करणानुयो ग का है। अपेक्षा से उसके ७० भेद होते हैं, जिसे चरणसत्तरी भी कहा गया है।

वय समणधम्म संजम वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
नाणाइतियं तवो कोह-निग्गहाइं चरणमेयं॥

पाँच महाव्रत, दश श्रमणधर्म, सतरह संयम, दश वैयावृत्य, नव ब्रह्मचर्यगुप्ति, ज्ञानादि तीन रत्न, बारह प्रकार का तप, चार क्रोधादि निग्रह इस प्रकार ७० भेद होते हैं।

करण—करण का शाब्दिक अर्थ जैसा टीकाकार ने किया है—"क्रियते चरणस्य पुष्टीरनेनेतिकरणं" जो चरण की पुष्टि करता है उसे करण कहते हैं। "कृत-कारित-अनुमोदन-रूपा करणं"—करना, करवाना, अनुमोदन करने को भी करण कहा जाता है। अर्थात् मूल गुण की पुष्टि करने वाले तत्वों को करण कहा जाता है। वह पिण्डविशुद्धि रूप ७० प्रकार का होता है—

पिण्डविसोही समिई, भावणा पडिमा य इन्दियनिग्गहो।
पडिलेहणं गुत्तीओ अभिग्गहं चेव करणं तु॥

पिंडेसणा

पिण्डविशुद्धि के चार प्रकार हैं।
समिति के पाँच प्रकार हैं।
भावना के बारह प्रकार हैं।
पडिमा के बारह प्रकार हैं।
इन्द्रिय-निरोध पाँच प्रकार के हैं।
प्रतिलेखना के पच्चीस प्रकार हैं।
गुप्ति के तीन प्रकार हैं।
अभिग्रह के चार प्रकार हैं।

धर्मकथानुयोग में उत्तराध्ययन आदि आगम एवं ऋषिभाषित ग्रन्थ आते हैं। धर्मकथानुयोग में मुख्यतः विशिष्ट पुरुषों के जीवनवृत्त एवं उनकी विशेषताओं का वर्णन मिलता है, जिनसे प्रेरित हो व्यक्ति दुर्गति से निवृत्त हो सम्यक् पथ का आचरण कर सके।

गणितानुयोग

जिन आगम ग्रन्थों में भंग एवं गणित की प्रधानता है, उनको गणितानुयोग कहा गया है। गणितानुयोग में प्रधानतया सूर्यप्रज्ञप्ति आदि आगम आते हैं। गणितानुयोग के माध्यम से आयुष्य, गति, स्थिति आदि विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान होता है।

द्रव्यानुयोग

जिसमें गुण और पर्याय अवस्थित हैं, उसे द्रव्य कहा गया हैं। द्रव्य की सत्-असत् समस्त पर्यायों के

१. प्रवचनसारोद्धार, पृ० १३२.
२. प्रवचनसारोद्धार, पृ० १३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्ध में जिसमें व्यवस्था की गई है, उसको द्रव्यानुयोग कहा है। द्रव्यानुयोग में दृष्टिवाद आदि को रखा गया है।

तर्कशास्त्र में वस्तुस्वरूप का वर्णन दस विभागों में किया गया है—

१. द्रव्यानुयोग—द्रव्य का विचार।

२. मातृकानुयोग—सत् का विचार।

३. एकार्थिकानुयोग—एक अर्थ वाले शब्दों का विचार।

४. करणानुयोग—साधन का विचार।

५. अर्पितानर्पितानुयोग—मुख्य और गौण का विचार।

६. भाविताभावितानुयोग—अन्य से अप्रभावित और प्रभावित।

७. बाध्याबाध्यानुयोग—सादृश्य और वैसादृश्य का विचार।

८. शाश्वताशाश्वतानुयोग—नित्यानित्य का विचार।

९. तथाज्ञान अनुयोग—सम्यग्दृष्टि का विचार।

१०. अतथाज्ञान अनुयोग—असम्यग्दृष्टि का विचार।

□

हत्थस ञ्ञतो पादसञ्ञतो, वाचाय सञ्ञतो सञ्ञमुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो, एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं॥

—धम्मपद २५–३

जिसके हाथ, पैर और वाणी में संयम है, जो उत्तम संयमी है, जो अध्यात्मरत, समाधियुक्त, एकाकी और सन्तुष्ट है, उसी को भिक्षु (साधु) कहा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org